.. Dnyaneshvari or Bhavarthadipika Chapter 14 ..

॥ ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय १४ ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥
अध्याय चौदावा ।
गुणत्रयविभागयोगः ।

जय जय आचार्या। समस्तसुरवर्या। प्रज्ञाप्रभातसूर्या। सुखोदया ॥ १॥
जय जय सर्व विसांवया। सो हंभावसुहावया। नाना लोक हेलावया। समुद्रा तूं ॥ २॥
आइकें गा आर्तबंधू। निरंतरकारुण्यसिंधू। विशदविद्यावधू-। वल्लभा जी ॥ ३॥
तू जयांप्रति लपसी। तया विश्व हें दाविसी। प्रकट तैं करिसी। आघवेंचि तूं ॥ ४॥
कीं पुढिलाची दृष्टि चोरिजे। हा दृष्टिबंधु निफजे। परी नवल लाघव तुझें। जें आपणपें चोरें ॥ ५॥
जी तूंचि तूं सर्वां यया। मा कोणा बोधु कोणा माया। ऐसिया आपेंआप लाघविया। नमो तुज ॥ ६॥
जाणों जगीं आप वोलें। तें तुझिया बोला सुरस जालें। तुझेनि क्षमत्व आलें। पृथ्वियेसी ॥ ७॥
रविचंद्रादि शुक्ती। उदो करिती त्रिजगतीं। तें तुझिया दीप्ती। तेज तेजां ॥ ८॥
चळवळिजे अनिळें। तें दैविकेनि जी निजबळें। नभ तुजमाजीं खेळे। लपीथपी ॥ ९॥
किंबहुना माया असोस। ज्ञान जी तुझेनि डोळस। असो वानणें सायास। श्रुतीसि हे ॥ १०॥
वेद वानूनि तंवचि चांग। जंव न दिसे तुझें आंग। मग आम्हां तया मूग। एके पांती ॥ ११॥
जी एकार्णवाचे ठाई। पाहतां थेंबाचा पाडु नाहीं। मा महानदी काई। जाणिजती ॥ १२॥
कां उअदयलिया भास्वतु। चंद्र जैसा खद्योतु। आम्हां श्रुति तुज आंतु। तो पाडु असे ॥ १३॥
आणि दुजया थांवो मोडे। जेथ परेशीं वैखरी बुडे। तो तूं मा कोणें तोंडें। वानावासी ॥ १४॥
यालागीं आतां। स्तुति सांडूनि निवांता। चरणीं ठेविजे माथा। हेंचि भलें ॥ १५॥
तरी तू जैसा आहासि तैसिया। नमो जी श्रीगुरुराया। मज ग्रंथोद्यमु फळावया। वेव्हारा होईं ॥ १६॥
आतां कृपाभांडवल सोडीं। भरीं मति माझी पोतडी। करीं ज्ञानपद्य जोडी। थोरा मातें ॥ १७॥
मग मी संसरेन तेणें। करीन संतांसी कर्णभूषणें। लेववीन सुलक्षणें। विवेकाचीं ॥ १८॥
जी गीतार्थनिधान। काढू माझें मन। सुयीं स्नेहांजन। आपलें तूं ॥ १९॥
हे वाक्सृष्टि एके वेळे। देखतु माझे बुद्धीचे डोळे। तैसा उदैजो जो निर्मळें। कारुण्यबिंबें ॥ २०॥
माझी प्रज्ञावेली वेल्हाळ। काव्यें होय सफळ। तो वसंतु होय स्नेहाळ-। शिरोमणी ॥ २१॥
प्रमेय महापूरें। हे मतिगंगा ये थोरें। तैसा वरिष उदारें। दिठीवेनी ॥ २२॥
अगा विश्वैकधामा। तुझा प्रसाद चंद्रमा। करूं मज पूर्णिमा। स्फूर्तीची जी ॥ २३॥
जी अवलोकिलिया मातें। उन्मेषसागरीं भरितें। वोसंडेल स्फूर्तीतें। रसवृत्तीचें ॥ २४॥
तंव संतोषोनि श्रीगुरुराजें। म्हणितलें विनतिव्याजें। मांडिलें देखोनि दुजें। स्तवनमिषें ॥ २५॥
हें असो आतां वांजटा। तो ज्ञानार्थ करूनि गोमटा। ग्रंथु दावीं उत्कंठा। भंगो नेदीं ॥ २६॥
हो कां जी स्वामी। हेंचि पाहत होतों मी। जे श्रीमुखें म्हणा तुम्ही। ग्रंथु सांग ॥ २७॥
सहजें दुर्वेचा डिरु। आंगेंचि तंव अमरु। वरी आला पूरु। पीयूषाचा ॥ २८॥

तरी आतां येणें प्रसादें। विन्यासें विदग्धें। मूळशास्त्रपदें। वाखाणीन ॥ २९॥
परी जीवा आंतुलीकडे। जैसी संदेहाची डोणी बुडे। ना श्रवणीं तरी चाडे। वाढी दिसे ॥ ३०॥
तैसी बोली साचारी। अवतरो माझी माधुरी। माले मागूनि घरीं। गुरुकृपेच्या ॥ ३१॥
तरी मागां त्रयोदशीं। अध्यायीं गोठी ऐसी। श्रीकृष्ण अर्जुनेंसी। चावळले ॥ ३२॥
जे क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगें। होईजे येणें जगें। आत्मा गुणसंगें। संसारिया ॥ ३३॥
आणि हाचि प्रकृतिगतु। सुखदुःख भोगीं हेतु। अथवा गुणातीतु। केवळु हा ॥ ३४॥
तरी कैसा पां असंगा संगु। कोण तो क्षेत्रक्षेत्रज्ञायोगु। सुखदुःखादि भोगु। केवीं तया ? ॥ ३५॥
गुण ते कैसे किती। बांधती कवणे रीती। नातरी गुणातीतीं। चिन्हें काई ? ॥ ३६॥
एवं इया आघवेया। अर्था रूप करावया। विषो एथ चौदाविया। अध्यायासी ॥ ३७॥
तरी तो आतां ऐसा। प्रस्तुत परियेसा। अभिप्रायो विश्वेशा। वैकुंठाचा ॥ ३८॥
तो म्हणे गा अर्जुना। अवधानाची सर्व सेना। मेळऊनि इया ज्ञाना। झोंबावें हो ! ॥ ३९॥
आम्हीं मागां तुज बहुतीं। दाविलें हें उपपत्ती। तरी आझुनी प्रतीती-। कुशीं न निघे ॥ ४०॥

श्रीभगवानुवाच ।
परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानाम् ज्ञानमुत्तमम् ।
यद्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १॥

म्हणौनि गा पुढती। सांगिजैल तुजप्रती। पर म्हण म्हणौनि श्रुतीं। डाहारिलें जें ॥ ४१॥
एऱ्हवीं ज्ञान हें आपुलें। परी पर ऐसेनि जालें। जे आवडोनि घेतलें। भवस्वर्गादिक ॥ ४२॥
अगा याचि कारणें। हें उत्तम सर्वांपरी मी म्हणें। जे वन्हि हें तृणें। येरें ज्ञानें ॥ ४३॥
जियें भवस्वर्गातें जाणती। यागचि चांग म्हणती। पारखी फुडी आथी। भेदीं जया ॥ ४४॥
तियें आघवींचि ज्ञानें। केलीं येणें स्वप्नें। जैशा वातोर्मी गगनें। गिळिजती अंतीं ॥ ४५॥
कां उदितें रश्मिराजें। लोपिलीं चंद्रादि तेजें। नाना प्रळयांबुमाजें। नदी नद ॥ ४६॥
तैसें येणें पाहलेया। ज्ञानजात जाय लया। म्हणौनियां धनंजया। उत्तम हें ॥ ४७॥
अनादि जे मुक्तता। आपुली असे पंडुसुता। तो मोक्षु हातां येता। होय जेणें ॥ ४८॥
जयाचिया प्रतीती। विचारवीरीं समस्तीं। नेदिजेचि संसृती। माथां उधऊं ॥ ४९॥
मनें मन घालूनि मागें। विश्रांति जालिया आंगें। ते देहीं देहाजोगे। होतीचि ना ॥ ५०॥
मग तें देहाचें बेळें। वोलांडूनि एकेचि वेळे। संवतुकी कांटाळें। माझें जालें ॥ ५१॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २॥

जे माझिया नित्यता। तेणें नित्य ते पंडुसुता। परिपूर्ण पूर्णता। माझियाची ॥ ५२॥
मी जैसा अनंतानंदु। जैसाचि सत्यसिंधु। तैसेचि ते भेदु। उरेचि ना ॥ ५३॥
जें मी जेवढें जैसें। तेंचि ते जाले तैसें। घटभंगीं घटाकाशें। आकाश जेवीं ॥ ५४॥
नातरीं दीपमूळकीं। दीपशिखा अनेकीं। मीनलिया अवलोकीं। होय जैसें ॥ ५५॥

अर्जुना तयापरी। सरली द्वैताची वारी। नांदे नामार्थ एकाहारीं। मीतूंविण ॥ ५६॥
येणेंचि पैं कारणें। जैं पहिलें सृष्टीचें जुंपणें। तेंही तया होणें। पडेचिना ॥ ५७॥
सृष्टीचिये सर्वादी। जयां देहाची नाहीं बांधी। ते कैचें प्रळयावधी। निमतील पां ? ॥ ५८॥
म्हणौनि जन्मक्षयां-। अतीत ते धनंजया। मी जालें ज्ञाना इया। अनुसरोनी ॥ ५९॥
ऐसी ज्ञानाची वाढी। वानिली देवें आवडी। तेवींचि पार्थाही गोडी। लावावया ॥ ६०॥
तंव तया जालें आन। सर्वांगीं निघाले कान। सणई अवधान। आतला पां ॥ ६१॥
आतां देवाचिया ऐसें। जाकळीजत असे वोरसें। जें निरूपण आकाशें। वेंटाळेना ॥ ६२॥
मग म्हणे गा प्रज्ञाकांता। उजवली आजि वक्तृत्वता। जे बोलायेवढा श्रोता। जोडलासी ॥ ६३॥
तरि एकु मी अनेकीं। गोंविजे देहपाशकीं। त्रिगुणीं लुब्धकीं। कवणेपरी ॥ ६४॥
कैसा क्षेत्रयोगें। वियें इयें जगें। तें परिस सांगें। कवणेपरी ॥ ६५॥
पैं क्षेत्र येणें व्याजें। यालागीं हें बोलिजे। जे मत्संगबीजें। भूतीं पिके ॥ ६६॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधामहम्यम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३॥

एऱ्हवीं तरी महद्ब्रह्म। यालागीं हें ऐसें नाम। जे महदादिविश्राम। शालिका हें ॥ ६७॥
विकारां बहुवस थोरी। अर्जुना हेंचि करी। म्हणौनि अवधारीं। महद्ब्रह्म ॥ ६८॥
अव्यक्तवादमतीं। अव्यक्त ऐसी वदंती। सांख्याचिया प्रतीती। प्रकृति हेचि ॥ ६९॥
वेदांतीं इयेतें माया। ऐसें म्हणिजे प्राज्ञराया। असो किती बोलों वायां। अज्ञान हें ॥ ७०॥
आपला आपणपेयां। विसरु जो धनंजया। तेंचि रूप यया। अज्ञानासी ॥ ७१॥
आणिकही एक असे। जें विचारावेळे न दिसे। वातीं पाहतां जैसें। अंधारें कां ॥ ७२॥
हालविलिया जाय। निश्चळीं तरी होय। दुधीं जैसी साय। दुधाची ते ॥ ७३॥
पैं जागरु ना स्वप्न। ना स्वरूप अवस्थान। ते सुषुप्ति कां घन। जैसी होय ॥ ७४॥
कां न वियतां वायूतें। वांझें आकाश रितें। तया ऐसें निरुतें। अज्ञान गा ॥ ७५॥
पैल खांबु कां पुरुखु। ऐसा निश्चयो नाहीं एकु। परी काय नेणों आलोकु। दिसत असे ॥ ७६॥
तेवीं वस्तु जैसी असे। तैसी कीर न दिसे। परी कांहीं अनारिसें। देखिजेना ॥ ७७॥
ना राती ना तेज। ते संधि जेवीं सांज। तेवीं विरुद्ध ना निज। ज्ञान आथी ॥ ७८॥
ऐसी कोण्ही एकी दिशा। तिये वादु अज्ञान ऐसा। तया गुंडलिया प्रकाशा। क्षेत्रज्ञु नाम ॥ ७९॥
अज्ञान थोरिये आणिजे। आपणपें तरी नेणिजे। तें रूप जाणिजे। क्षेत्रज्ञाचें ॥ ८०॥
हाचि उभय योगु। बुझें बापा चांगु। सत्तेचा नैसर्गु। स्वभावो हा ॥ ८१॥
आतां अज्ञानासारिखें। वस्तु आपणपांचि देखे। परी रूपें अनेकें। नेणों कोणें ॥ ८२॥
जैसा रंकु भ्रमला। म्हणे जा रे मी रावो आला। कां मूर्च्छितु गेला। स्वर्गलोकां ॥ ८३॥
तेवीं लचकलिया दिठी। मग देखणें जें जें उठी। तया नाम सृष्टी। मीचि वियें पैं गा ॥ ८४॥
जैसें कां स्वप्नमोहा। तो एकाकी देखे बहुवा। तोचि पाडु आत्मया। स्मरणेंवीण असे ॥ ८५॥
हेंचि आनीभ्रांती। प्रमेय उपलवूं पुढती। परी तूं प्रतीती। याचि घे पां ॥ ८६॥
तरी माझी हे गृहिणी। अनादि तरुणी। अनिर्वाच्यगुणी। अविद्या हे ॥ ८७॥

इये नाहीं हेंचि रूप। ठाणें हें अति उमप। हें निद्रितां समीप। चेतां दुरी ॥ ८८॥
पैं माझेनिचि आंगें। पहुढल्या हे जागे। आणि सत्तासंभोगें। गुर्विणी होय ॥ ८९॥
महद्‌ब्रह्मउदरीं। प्रकृतीं आठै विकारीं। गर्भाची करी। पेलोवेली ॥ ९०॥
उभयसंगु पहिलें। बुद्धितत्त्वें प्रसवलें। बुद्धितत्त्व भारैलें। होय मन ॥ ९१॥
तरुणी ममता मनाची। ते अहंकार तत्त्व रची। तेणें महाभूतांची। अभिव्यक्ति होय ॥ ९२॥
आणि विषयेंद्रियां गौसी। स्वभावें तंव भूतांसी। म्हणौनि येती सरिसीं। तियेंही रूपा ॥ ९३॥
जालेनि विकारक्षोभें। पाठीं त्रिगुणाचें उभें। तेव्हां ये वासनागर्भें। ठायेंठावों ॥ ९४॥
रुखाचा आवांका। जैसी बीजकणिका। जीवीं बांधें उदका। भेटतखेंवो ॥ ९५॥
तैसी माझेनि संगें। अविद्या नाना जगें। आर घेवों लागे। आणियाची ॥ ९६॥
मग गर्भगोळा तया। कैसें रूप तैं ये आया। तें परियेसें राया। सुजनांचिया ॥ ९७॥
पैं मणिज स्वेदज। उद्भिज जारज। उमटती सहज। अवयव हें ॥ ९८॥
व्योमवायुवशें। वाढलेनि गर्भरसें। मणिजु उससे। अवयव तो ॥ ९९॥
पोटीं सूनि तमरजें। आगळिकां तोय तेजें। उठितां निफजे। स्वेदजु गा ॥ १००॥
आपपृथ्वी उत्कटें। आणि तमोमात्रें निकृष्टें। स्थावरु उमटे। उद्भिजु हा ॥ १०१॥
पांचां पांचही विरजीं। होती मनबुद्ध्यादि साजीं। हीं हेतु जारजीं। ऐसें जाण ॥ १०२॥
ऐसे चारी हे सरळ। करचरणतळ। महाप्रकृति स्थूळ। तेंचि शिर ॥ १०३॥
प्रवृत्ति पेललें पोट। निवृत्ति ते पाठी नीट। सुर योनी आंगें आठ। ऊर्ध्वाचीं ॥ १०४॥
कंठु उल्हासता स्वर्गु। मृत्युलोकु मध्यभागु। अधोदेशु चांगु। नितंबु तो ॥ १०५॥
ऐसें लेकरूं एक। प्रसवली हें देख। जयाचें तिन्ही लोक। बाळसें गा ॥ १०६॥
चौऱ्यांयशीं लक्ष योनी। तियें कांडां पेरां सांदणी। वाढे प्रतिदिनीं। बाळक हें ॥ १०७॥
नाना देह अवयवीं। नामाचीं लेणीं लेववी। मोहस्तन्यें वाढवी। नित्य नवें ॥ १०८॥
सृष्टी वेगवेगळीया। तिया करांग्रीं आंगोळियां। भिन्नाभिमान सूदलिया। मुदिया तेथें ॥ १०९॥
हें एकलौतें चराचर। अविचारित सुंदर। प्रसवोनि थोर। थोरावली ॥ ११०॥
पै ब्रह्मा प्रातःकाळु। विष्णु तो माध्यान्ह वेळु। सदाशिव सायंकाळु। बाळा यया ॥ १११॥
महाप्रळयसेजे। खिळोनि निवांत निजे। विषमज्ञानें उमजें। कल्पोदयीं ॥ ११२॥
अर्जुना इयापरी। मिथ्यादृष्टीच्या घरीं। युगानुवृत्तीचीं करी। चोज पाउलें ॥ ११३॥
संकल्पु जयाचा इट्टु। अहंकारु तो विनटु। ऐसिया होय शेवटु। ज्ञानें यया ॥ ११४॥
आतां असो हे बहु बोली। ऐसें विश्व माया व्याली। तेथ साह्य जाली। माझी सत्ता ॥ ११५॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४॥

याकारणें मी पिता। महद्‌ब्रह्म हे माता। अपत्य पंडुसुता। जगडंबरु ॥ ११६॥
आतां शरीरें बहुतें। देखोनि न भेदें हो चित्तें। जे मनबुद्ध्यादि भूतें। एकेंचि येथें ॥ ११७॥
हां गा एकाचि देहीं। काय अनारिसें अवयव नाहीं ?। तेवीं विचित्र विश्व पाहीं। एकचि हें ॥ ११८॥
पैं उंचा नीचा डाहाळिया। विषमा वेगळालिया। येकाचि जेवीं जालिया। बीजाचिया ॥ ११९॥

आणि संबंधु तोही ऐसा। मृत्तिके घट्ट लेंकु जैसा। कां पटत्व कापुसा। नातू होय ॥१२०॥
नाना कल्लोळपरंपरा। संतती जैसी सागरा। आम्हां आणि चराचरा। संबंधु तैसा ॥१२१॥
म्हणौनि वन्हि आणि ज्वाळ। दोन्ही वन्हीचि केवळ। तेवीं मी गा सकळ। संबंधु वावो ॥१२२॥
जालेनि जगें मी झांकें। तरी जगत्वें कोण फांके ?। किळेवरी माणिकें। लोपिजे काई ? ॥१२३॥
अळंकारातें आलें। तरी सोनेपण काइ गेलें ?। कीं कमळ फांकलें। कमळत्वा मुके ? ॥१२४॥
सांग पां धनंजया। अवयवीं अवयविया। आच्छादिजे कीं तया। तेंचि रूप ? ॥१२५॥
कीं विरूढलिया जोंधळा। कणिसाचा निर्वाळा। वेंचला कीं आगळा। दिसतसे ॥१२६॥
म्हणौनि जग परौतें। सारूनि पाहिजे मातें। तैसा नोव्हें उखितें। आघवें मीचि ॥१२७॥
हा तूं साचोकारा। निश्चयाचा खरा। गांठीं बांध वीरा। जीवाचिये ॥१२८॥
आतां मियां मज दाविला। शरीरीं वेगळाला। गुणीं मीचि बांधला। ऐसा आवडें ॥१२९॥
जैसें स्वप्नीं आपण। उठूनियां आत्ममरण। भोगिजे गा जाण। कपिध्वजा ॥१३०॥
कां कवळातें डोळे। प्रकाशूनि पिवळें। देखती तेंही कळे। तयांसीचि ॥१३१॥
नाना सूर्यप्रकाशें। प्रकटी तैं अभ्र भासे। तो लोपला हेंही दिसे। सूर्येंचि कीं ॥१३२॥
पैं आपणपेनि जालिया। छाया गा आपुलिया। बिहोनि बिहालिया। आन आहे ? ॥१३३॥
तैसीं इयें नाना देहें। दाऊनि मी नाना होयें। तेथ ऐसा जो बंधु आहे। तेंही देखें ॥१३४॥
बंधु कां न बंधिजे। हें जाणणें मज माझें। नेणणेनि उपजे। आपलेनि ॥१३५॥
तरी कोणें गुणें कैसा। मजचि मी बंधु ऐसा। आवडे तें परियेसा। अर्जुनदेवा ॥१३६॥
गुण ते किती किंधर्म। कायिययां रूपनाम। कें जालें हें वर्म। अवधारीं पां ॥१३७॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

तरी सत्त्वरजतम। तिघांसि हें नाम। आणि प्रकृति जन्म-। भूमिका ययां ॥१३८॥
येथ सत्त्व तें उत्तम। रज तें मध्यम। तिहींमाजीं तम। सावियाधारें ॥१३९॥
हें एकेचि वृत्तीच्या ठायीं। त्रिगुणत्व आवडे पाहीं। वयसात्रय देहीं। येकीं जेवीं ॥१४०॥
कां मीनलेनि कीडें। जंव जंव तूक वाढे। तंव तंव सोनें हीन पडे। पांचिका कसीं ॥१४१॥
पैं सावधपण जैसें। वाहविलें आळसें। सुषुप्ति बैसे। घणावोनि ॥१४२॥
तैसी अज्ञानांगीकारें। निगाली वृत्ति विखुरे। ते सत्त्वरजद्वारें। तमही होय ॥१४३॥
अर्जुना गा जाण। ययां नाम गुण। आतां दाखऊं खूण। बांधिती ते ॥१४४॥
तरी क्षेत्रज्ञदशे। आत्मा मोटका पैसे। हें देह मी ऐसें। मुहूर्त करी ॥१४५॥
आजन्ममरणांतीं। देहधर्मीं समस्तीं। ममत्वाची सूती। घे ना जंव ॥१४६॥
जैसी मीनाच्या तोंडीं। पडेना जंव उंडी। तंव गळ आसुडी। जळपारधी ॥१४७॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥६॥

तेवीं सत्त्वें लुब्धकें। सुखज्ञानाचीं पाशकें। वोढिजती मग खुडके। मृगु जैसा ॥ १४८ ॥
मग ज्ञानें चडफडी। जाणिवेचे खुरखोडी। स्वयं सुख हें धाडी। हातींचें गा ॥ १४९ ॥
तेव्हां विद्यामानें तोखे। लाभमात्रें हरिखे। मी संतुष्ट हेंही देखे। श्लाघों लागे ॥ १५० ॥
म्हणे भाग्य ना माझें ?। आजि सुखियें नाहीं दुजें। विकाराष्टकें फुंजे। सात्त्विकाचेनि ॥ १५१ ॥
आणि येणेंही न सरे। लांकण लागे दुसरें। जें विद्वत्तेचें भरे। भूत आंगीं ॥ १५२ ॥
आपणचि ज्ञानस्वरूप आहे। तें गेलें हें दुःख न वाहे। कीं विषयज्ञानें होये। गगनायेवढा ॥ १५३ ॥
रावो जैसा स्वप्नीं। रंकपणें रिघे धानीं। तो दों दाणां मानी। इंद्रु ना मी ॥ १५४ ॥
तैसें गा देहातीता। जालेया देहवंता। हों लागे पंडुसुता। बाह्यज्ञानें ॥ १५५ ॥
प्रवृत्तिशास्त्र बुझे। यज्ञविद्या उमजे। किंबहुना सुझे। स्वर्गवरी ॥ १५६ ॥
आणि म्हणे आजि आन। मीवांचूनि नाहीं सज्ञान। चातुर्यचंद्रा गगन। चित्त माझें ॥ १५७ ॥
ऐसें सत्त्व सुखज्ञानीं। जीवासि लावूनि कानी। बैलाची करी वानी। पांगुळाचिया ॥ १५८ ॥
आतां हाचि शरीरीं। रजें जियापरी। बांधिजे तें अवधारीं। सांगिजैल ॥ १५९ ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ ७ ॥

हें रज याचि कारणें। जीवातें रंजऊं जाणे। हें अभिलाखाचें तरुणें। सदाचि गा ॥ १६० ॥
हें जीवीं मोटकें रिगे। आणि कामाच्या मदीं लागे। मग वारया वळघे। तृष्णेचिया ॥ १६१ ॥
घृतें आंबुखूनि आगियाळें। वज्राग्नीचें सादुकलें। आतां बहु थेंकुलें। आहे तेथ ? ॥ १६२ ॥
तैसी खवळें चाड। होय दुःखासकट गोड। इंद्रश्रीहि सांकड। गमों लागे ॥ १६३ ॥
तैसी तृष्णा वाढिनलिया। मेरुही हाता आलिया। तऱ्ही म्हणे एखादिया। दारुणा वळघो ॥ १६४ ॥
जीविताचि कुरोंडी। वोवाळूं लागे कवडी। मानी तृणाचिये जोडी। कृतकृत्यता ॥ १६५ ॥
आजि असतें वेंचिजेल। परी पाहे काय कीजेल। ऐसा पांगीं वडील। व्यवसाय मांडी ॥ १६६ ॥
म्हणे स्वर्गा हन जावें। तरी काय तेथें खावें। इयालागीं धांवें। याग करूं ॥ १६७ ॥
व्रतापाठीं व्रतें। आचरें इष्टापूर्तें। काम्यावांचूनि हातें। शिवणें नाहीं ॥ १६८ ॥
पैं ग्रीष्मांतींचा वारा। विसांवो नेणें वीरा। तैसा न म्हणे व्यापारा। रात्रदिवस ॥ १६९ ॥
काय चंचळु मासा ?। कामिनीकटाक्षु जैसा। लवलाहो तैसा। विजूही नाहीं ॥ १७० ॥
तेतुलेनि गा वेगें। स्वर्गसंसारपांगें। आगीमाजीं रिगे। क्रियांचिये ॥ १७१ ॥
ऐसा देहीं देहावेगळा। ले तृष्णेचिया सांखळा। खटाटोपु वाहे गळां। व्यापाराचा ॥ १७२ ॥
हें रजोगुणाचें दारुण। देहीं देहियासी बंधन। परिस आतां विंदाण। तमाचें तें ॥ १७३ ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

व्यवहाराचेहि डोळे। मंद जेणें पडळें। मोहरात्रीचें काळें। मेहुडें जें ॥ १७४ ॥
अज्ञानाचें जियालें। जया एका लागलें। जेणें विश्व भुललें। नाचत असे ॥ १७५ ॥

अविवेकमहामंत्र। जें मौढ्यमद्याचें पात्र। हें असो मोहनास्त्र। जीवांसि जें ॥ १७६ ॥
पार्था तें गा तम। रचूनि ऐसें वर्म। चौखुरी देहात्म-। मानियातें ॥ १७७ ॥
हें एकचि कीर शरीरीं। माजों लागे चराचरीं। आणि तेथ दुसरी। गोठी नाहीं ॥ १७८ ॥
सर्वेंद्रिया जाड्य। मनामाजीं मौढ्य। माल्हाती जे दार्ढ्य। आलस्याचें ॥ १७९ ॥
आंगें आंग मोडामोडी। कार्यजाती अनावडी। नुसती परवडी। जांभयांची ॥ १८० ॥
उघडियाची दिठी। देखणें नाहीं किरीटी। नाळवितांचि उठी। वो म्हणौनि ॥ १८१ ॥
पडलिये धोंडी। नेणे कानी मुरडी। तयाचि परी मुरकुंडी। उकलूं नेणें ॥ १८२ ॥
पृथ्वी पाताळीं जांवो। कां आकाशही वरी येवो। परी उठणें हा भावो। उपजों नेणें ॥ १८३ ॥
उचितानुचित आघवें। झांसुरता नाठवे जीवें। जेथींचा तेथ लोळावें। ऐसी मेधा ॥ १८४ ॥
उभऊनि करतळें। पडिघाये कपोळें। पायाचें शिरियाळें। मांडूं लागे ॥ १८५ ॥
आणि निद्रेविषयीं चांगु। जीवीं आथि लागु। झोंपीं जातां स्वर्गु। वावो म्हणे ॥ १८६ ॥
ब्रह्मायु होईजे। मा निजलेयाचि असिजे। हें वांचूनि दुजें। व्यसन नाहीं ॥ १८७ ॥
कां वाटें जातां वोघें। कल्हातांही डोळा लागे। अमृतही परी नेघे। जरी नीद आली ॥ १८८ ॥
तेवींचि आक्रोशबळें। व्यापारे कोणे एके वेळे। निगालें तरी आंधळें। रोषें जैसें ॥ १८९ ॥
केधवां कैसे राहाटावें। कोणेसीं काय बोलावें। हें ठाकतें कीं नागवें। हेंही नेणें ॥ १९० ॥
वणवा मियां आघवा। पांखें पुसोनि घेयावा। पतंगु पां हांवा। घाली जेवीं ॥ १९१ ॥
तैसा वळघे साहसा। अकरणींच धिंवसा। किंबहुना ऐसा। प्रमादु रुचे ॥ १९२ ॥
एवं निद्रालस्यप्रमादीं। तम इया त्रिबंधीं। बांधे निरुपाधी। चोखटातें ॥ १९३ ॥
जैसा वन्ही काष्ठीं भरे। तैं दिसे काष्ठाकारें। व्योम घटें आवरे। तें घटाकाश ॥ १९४ ॥
नाना सरोवर भरलें। तैं चंद्रत्व तेथें बिंबलें। तैसें गुणाभासीं बांधलें। आत्मत्व गमे ॥ १९५ ॥

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥

पैं हरूनि कफवात। जैं देही आटोपे पित्त। तैं करी संतप्त। देह जेवीं ॥ १९६ ॥
कां वरिष आतप जैसें। जिणौनि शीतचि दिसे। तेव्हां होय हिंव ऐसें। आकाश हें ॥ १९७ ॥
नाना स्वप्न जागृती। लोपूनि ये सुषुप्ती। तैं क्षणु एक चित्तवृत्ती। तेचि होय ॥ १९८ ॥
तैसीं रजतमें हारवी। जैं सत्त्व माजु मिरवी। तैं जीवाकरवीं म्हणवी। सुखिया ना मी ? ॥ १९९ ॥
तैसेंचि सत्त्व रज। लोपूनि तमाचें भोज। वळघें तैं सहज। प्रमादीं होय ॥ २०० ॥
तयाचि गा परिपाठीं। सत्त्व तमातें पोटीं। घालूनि जेव्हां उठी। रजोगुण ॥ २०१ ॥
तेव्हां कर्मावांचूनि कांहीं। आन गोमटें नाहीं। ऐसें मानी देहीं। देहराजु ॥ २०२ ॥
त्रिगुण वृद्धि निरूपण। तीं श्लोकीं सांगितलें जाण। आतां सत्त्वादि वृद्धिलक्षण। सादर परियेसीं ॥ २०३ ॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

पैं रजतमविजयें। सत्त्व गा देहीं इयें। वाढतां चिन्हें तियें। ऐसीं होतीं ॥ २०२०४ ॥
जे प्रज्ञा आंतुलीकडे। न समाती बाहेरी वोसंडें। वसंतीं पद्मखंडें। दृती जैसी ॥ २०५ ॥
सर्वेंद्रियांच्या आंगणीं। विवेक करी राबणी। साचचि करचरणीं। होती डोळे ॥ २०६ ॥
राजहंसापुढें। चांचूचें आगरडें। तोडी जेवीं झगडे। क्षीरनीराचे ॥ २०७ ॥
तेवीं दोषादोषविवेकीं। इंद्रियेंचि होती पारखीं। नियमु बा रे पायिकी। वोळगे तैं ॥ २०८ ॥
नाइकणें तें कानचि वाळी। न पहाणें तें दिठीचि गाळी। अवाच्य तें टाळी। जीभचि गा ॥ २०९ ॥
वाती पुढां जैसें। पळों लागे काळवसें। निषिद्ध इंद्रियां तैसें। समोर नोहे ॥ २१० ॥
धाराधरकाळें। महानदी उचंबळे। तैसी बुद्धि पघळे। शास्त्रजातीं ॥ २११ ॥
अगा पुनवेच्या दिवशीं। चंद्रप्रभा धांवे आकाशीं। ज्ञानीं वृत्ति तैसी। फांके सैंघ ॥ २१२ ॥
वासना एकवटे। प्रवृत्ति वोहटे। मानस विटे। विषयांवरी ॥ २१३ ॥
एवं सत्त्व वाढे। तैं हें चिन्ह फुडें। आणि निधनही घडे। तेव्हांचि जरी ॥ २१४ ॥
कां पाहालेनि सुयाणें। जालया परगुणें। पडियंतें पाहुणें। स्वर्गौनियां ॥ २१५ ॥
तरी जैसीचि घरींची संपत्ती। आणि तैसीचि औदार्यधैर्यवृत्ती। मा परत्रा आणि कीर्ती। कां नोहावें ? ॥ २१६ ॥
मग गोमटेया तया। जावळी असे धनंजया। तेवीं सत्त्वीं जाणे देहा। कें आथि गा ? ॥ २१७ ॥
जे स्वगुणीं उद्भट। घेऊनि सत्त्व चोखट। निगे सांडूनि कोपट। भोगक्षम हें ॥ २१८ ॥
अवचटें ऐसा जो जाये। तो सत्त्वाचाचि नवा होये। किंबहुना जन्म लाहे। ज्ञानियांमाजीं ॥ २१९ ॥

सांग पां धनुर्धरा। रावो रायपणें डोंगरा। गेलिया अपुरा। होय काई ? ॥ २२०॥
नातरी येथिंचा दिवा। नेलिया सेजिया गांवा। तो तेथें तरी पांडवा। दीपचि कीं ॥ २२१॥
तैसी ते सत्त्वशुद्धी। आगळी ज्ञानेंसी वृद्धी। तरंगावों लागें बुद्धी। विवेकावरी ॥ २२२॥
पैं महदादि परिपाठीं। विचारूनि शेवटीं। विचारासकट पोटीं। जिरोनि जाय ॥ २२३॥
छत्तिसां सदतिसावें। चोविसां पंचविसावें। तिन्ही नुरोनि स्वभावें। चतुर्थ जें ॥ २२४॥
ऐसें सर्व जें सर्वोत्तम। जालें असे जया सुगम। तयासवें निरुपम। लाहे देह ॥ २२५॥
इयाचि परी देख। तमसत्त्व अधोमुख। बैसोनि जैं आगळीक। धरी रज ॥ २२६॥
आपलिया कार्याचा। धुमाड गांवीं देहाचा। माजवी तैं चिन्हांचा। उदयो ऐसा ॥ २२७॥
पांजरली वाहुटळी। करी वेगळ वेंटाळी। तैसी विषयीं सरळी। इंद्रियां होय ॥ २२८॥
परदारादि पडे। परी विरुद्ध ऐसें नावडे। मग शेळियेचेनि तोंडें। सैंघ चारी ॥ २२९॥
हा ठायवरी लोभु। करी स्वैरत्वाचा राबु। वेंटाळितां अलाभु। तें तें उरे ॥ २३०॥
आणि आड पडलिया। उद्यमजाती भलतिया। प्रवृत्ती धनंजया। हातु न काढी ॥ २३१॥
तेवींचि एखादा प्रासादु। कां करावा अश्वमेधु। ऐसा अचाट छंदु। घेऊनि उठी ॥ २३२॥
नगरेंचि रचावीं। जळाशयें निर्मावीं। महावनें लावावीं। नानाविधें ॥ २३३॥
ऐसैसां अफाटीं कर्मीं। समारंभु उपक्रमीं। आणि दृष्टादृष्ट कामीं। पुरे न म्हणे ॥ २३४॥
सागरुही सांडीं पडे। आगी न लाहे तीन कवडे। ऐसें अभिलषीं जोडे। दुर्भरत्व ॥ २३५॥
स्पृहा मना पुढां पुढां। आशेचा घे दवडा। विश्व घापे चाडा। पायांतळीं ॥ २३६॥
इत्यादि वाढतां रजीं। इयें चिन्हें होतीं साजीं। आणि ऐशा समाजीं। वेंचे जरी देह ॥ २३७॥
तरी आघवाचि इहीं। परिवारला आनी देहीं। रिगे परी योनिही। मानुषीचि ॥ २३८॥
सुरवाडेंसिं भिकारी। वसो पां राजमंदिरीं। तरी काय अवधारीं। रावो होईल ? ॥ २३९॥
बैल तेथें करबाडें। हें न चुके गा फुडें। नेईजो कां वऱ्हाडें। समर्थाचेनी ॥ २४०॥
म्हणौनि व्यापारा हातीं। उसंतु दिहा ना राती। तैसयाचिये पांती। जुंपिजे तो ॥ २४१॥
कर्मजडाच्या ठायीं। किंबहुना होय देहीं। जो रजोवृत्तीच्या डोहीं। बुडोनि निमे ॥ २४२॥
मग तैसाचि पुढती। रजसत्त्ववृत्ती। गिळूनि ये उन्नती। तमोगुण ॥ २४३॥
तैंचि जियें लिंगें। देहींचीं सबाह्य सांगें। तियें परिस चांगें। श्रोत्रबळें ॥ २४४॥
तरी होय ऐसें मन। जैसें रविचंद्रहीन। रात्रींचें कां गगन। अंवसेचिये ॥ २४५॥
तैसें अंतर असोस। होय स्फूर्तिहीन उद्वस। विचाराची भाष। हारपे तैं ॥ २४६॥
बुद्धि मेचवेना धोंडीं। हा ठायवरी मवाळें सांडी। आठवो देशधडी। जाला दिसे ॥ २४७॥
अविवेकाचेनि माजें। सबाह्य शरीर गाजे। एकलेनि घेपे दीजे। मौढ्य तेथ ॥ २४८॥
आचारभंगाचीं हाडें। रुपतीं इंद्रियांपुढें। मरे जरी तेणेंकडे। क्रिया जाय ॥ २४९॥
पैं आणिकही एक दिसे। जे दुष्कृतीं चित्त उल्हासे। आंधारी देखणें जैसें। डुडुळाचें ॥ २५०॥
तैसें निषिद्धाचेनि नांवें। भलतेंही भरे हावे। तियेविषयीं धांवे। घेती करणें ॥ २५१॥
मदिरा न घेतां डुले। सन्निपातेंवीण बरळे। निष्प्रेमेंचि भुले। पिसें जैसें ॥ २५२॥
चित्त तरी गेलें आहे। परी उन्मनी ते नोहे। ऐसें माल्हातिजे मोहें। माजिरेनि ॥ २५३॥
किंबहुना ऐसैसीं। इयें चिन्हें तम पोषीं। जैं वाढे आयितीसी। आपुलिया ॥ २५४॥
आणि हेंचि होय प्रसंगें। मरणाचें जरी पडे खागें। तरी तेतुलेनि निगे। तमेंसीं तो ॥ २५५॥

राई राईपण बीजीं। सांठवूनियां अंग त्यजी। मग विरूढे तैं दुजी। गोठी आहे ? ॥ २५६ ॥
पैं होऊनि दीपकलिका। येरु आगी विझो कां। कां जेथ लागे तेथ असका। तोचि आहे ॥ २५७ ॥
म्हणौनि तमाचिये लोथें। बांधोनियां संकल्पातें। देह जाय तैं मागौतें। तमाचेचि होय ॥ २५८ ॥
आतां काय येणें बहुवे। जो तमोवृद्धि मृत्यु लाहे। तो पशु कां पक्षी होये। झाड कां कृमी ॥ २५९ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

येणेंचि पैं कारणें। जें निपजे सत्त्वगुणें। तें सुकृत ऐसें म्हणे। श्रौत समो ॥ २६० ॥
म्हणौनि तया निर्मळा। सुखज्ञानी सरळा। अपूर्व ये फळा। सात्त्विक तें ॥ २६१ ॥
मग राजसा जिया क्रिया। तया इंद्रावणी फळलिया। जें सुखें चितारूनियां। फळती दुःखें ॥ २६२ ॥
कां निंबोळियेचें पिक। वरि गोड आंत विख। तैसें तें राजस देख। क्रियाफळ ॥ २६३ ॥
तामस कर्म जितुकें। अज्ञानफळेंचि पिके। विषांकुर विखें। जियापरी ॥ २६४ ॥

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

म्हणौनि बा रे अर्जुना। येथ सत्त्वचि हेतु ज्ञाना। जैसा कां दिनमाना। सूर्य हा पैं ॥ २६५ ॥
आणि तैसेंचि हें जाण। लोभासि रज कारण। आपुलें विस्मरण। अद्वैता जेवीं ॥ २६६ ॥
मोह अज्ञान प्रमादा। ययां मैळेया दोषवृंदा। पुढती पुढती प्रबुद्धा। तमचि मूळ ॥ २६७ ॥
ऐसें विचाराच्या डोळां। तिन्ही गुण हे वेगळवेगळां। दाविले जैसा आंवळा। तळहातींचा ॥ २६८ ॥
तंव रजतमें दोन्हीं। देखिलीं प्रौढ पतनीं। सत्त्वावांचूनि नाणीं। ज्ञानाकडे ॥ २६९ ॥
म्हणौनि सात्त्विक वृत्ती। एक जाले गा जन्मव्रती। सर्वत्यागें चतुर्थी। भक्ति जैसी ॥ २७० ॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८ ॥

तैसें सत्त्वाचेनि नटनाचें। असणें जाणें जयांचें। ते तनुत्यागीं स्वर्गींचे। राय होती ॥ २७१ ॥
इयाचि परी रजें। जिहीं कां जीजे मरिजे। तिहीं मनुष्य होईजे। मृत्युलोकीं ॥ २७२ ॥
तेथ सुखदुःखाचें खिचटें। जेविजें एकेचि ताटें। जेथ इये मरणवाटे। पडिलें नुठी ॥ २७३ ॥
आणि तयाचि स्थिति तमीं। जे वाढोनि निमती भोगक्षमीं। ते घेती नरकभूमी। मूळपत्र ॥ २७४ ॥
एवं वस्तूचिया सत्ता। त्रिगुणासी पंडुसुता। दाविली सकारणता। आघवीचि ॥ २७५ ॥
पैं वस्तु वस्तुत्वें असिकें। तें आपणपें गुणासारिखें। देखोनि कार्यविशेखें। अनुकरे गा ॥ २७६ ॥
जैसें कां स्वप्नींचेनि राजें। जैं परचक्र देखिजे। तैं हारी जैत होईजे। आपणपांचि ॥ २७७ ॥
तैसे मध्योर्ध्व अध। हे जे गुणवृत्तिभेद। ते दृष्टीवांचूनि शुद्ध। वस्तुचि असे ॥ २७८ ॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥

परी हे वाहणी असो। तरी तुज आन न दिसो। परिसें तें सांगतसों। मागील गोठी ॥ २७९ ॥
तरी ऐसें जाणिजे। सामर्थ्यें तिन्ही सहजें। होती देहव्याजें। गुणचि हे ॥ २८० ॥
इंधनाचेनि आकारें। अग्नि जैसा अवतरे। कां आंगवे तरुवरें। भूमिरसु ॥ २८१ ॥
नाना दहिंयाचेनि मिसें। परिणमे दूधचि जैसें। कां मूर्त होय ऊंसें। गोडी जेवीं ॥ २८२ ॥
तैसें हे स्वांतःकरण। देहचि होती त्रिगुण। म्हणौनि बंधासि कारण। घडे कीर ॥ २८३ ॥
परी चोज हें धनुर्धरा। जे एवढा हा गुंफिरा। मोक्षाचा संसारा। उणा नोहे ॥ २८४ ॥
त्रिगुण आपुलालेनि धर्में। देहींचे माघुत साउमें। चाळितांही न खोमें। गुणातीतता ॥ २८५ ॥
ऐसी मुक्ति असे सहज। ते आतां परिसऊं तुज। जे तूं ज्ञानांबुज-। द्विरेफु कीं ॥ २८६ ॥
आणि गुणीं गुणाजोगें। चैतन्य नोहे मागें। बोलिलों तें खागें। तेवींचि हें ॥ २८७ ॥
तरी पार्था जैं ऐसें। बोधलेनि जीवें दिसे। स्वप्न कां जैसें। चेइलेनी ॥ २८८ ॥
नातरी आपण जळीं। बिंबलों तीरोनी न्याहळी। चळण होतां कल्लोळीं। अनेकधा ॥ २८९ ॥
कां नटलेनि लाघवें। नटु जैसा न झकवे। तैसें गुणजात देखावें। न होनियां ॥ २९० ॥
पैं ऋतुत्रय आकाशें। धरूनियांही जैसें। नेदिजेचि येवों वोसें। वेगळेपणा ॥ २९१ ॥
तैसें गुणीं गुणापरौतें। जें आपणपें असे आयितें। तिये अहं बैसे अहंतें। मूळकेचिये ॥ २९२ ॥
तैं तेथूनि मग पाहतां। म्हणे साक्षी मी अकर्ता। हे गुणचि क्रियाजातां। नियोजित ॥ २९३ ॥
सत्त्वरजतमांचा। भेदीं पसरु कर्माचा। होत असे तो गुणांचा। विकारु हा ॥ २९४ ॥
ययामाजीं मी ऐसा। वनीं कां वसंतु जैसा। वनलक्ष्मीविलासा। हेतुभूत ॥ २९५ ॥
कां तारांगणीं लोपावें। सूर्यकांतीं उद्दीपावें। कमळीं विकासावें। जावें तमें ॥ २९६ ॥
ये कोणाचीं काजें कहीं। सवितिया जैसी नाहीं। तैसा अकर्ता मी देहीं। सत्तारूप ॥ २९७ ॥
मी दाऊनि गुण देखे। गुणता हे मियां पोखे। ययाचेनि निःशेखें। उरे तें मी ॥ २९८ ॥
ऐसेनि विवेकें जया। उदो होय धनंजया। ये गुणातीतत्व तया। अर्थपंथें ॥ २९९ ॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

आतां निर्गुण असे आणिक। तें तो जाणें अचुक। जे ज्ञानें केलें टीक। तयाचिवरी ॥ ३०० ॥
किंबहुना पंडुसुता। ऐसी तो माझी सत्ता। पावे जैसी सरिता। सिंधुत्व गा ॥ ३०१ ॥
नळिकेवरूनि उठिला। जैसा शुक शाखे बैसला। तैसा मूळ अहंतें वेढिला। तो मी म्हणौनि ॥ ३०२ ॥
अगा अज्ञानाचिया निदा। जो घोरत होता बदबदा। तो स्वस्वरूपीं प्रबुद्धा। चेइला कीं ॥ ३०३ ॥
पैं बुद्धिभेदाचा आरिसा। तया हातोनि पडिला वीरेशा। म्हणौनि प्रतिमुखाभासा। मुकला तो ॥ ३०४ ॥
देहाभिमानाचा वारा। आतां वाजो ठेला वीरा। तैं ऐक्य वीचिसागरां। जीवेशां हें ॥ ३०५ ॥
म्हणौनि मद्भावेंसी। प्राप्ति पाविजे तेणेंसरिसी। वर्षांतीं आकाशीं। घनजात जेवीं ॥ ३०६ ॥
तेवीं मी होऊनि निरुता। मग देहींचि ये असतां। नागवे देहसंभूतां। गुणांसि तो ॥ ३०७ ॥

जैसा भिंगाचेनि घरें। दीपप्रकाशु नावरे। कां न विझेचि सागरें। वडवानळु ॥ ३०८॥
तैसा आला गेला गुणांचा। बोधु न मैळे तयाचा। तो देहीं जैसा व्योमींचा। चंद्र जळीं ॥ ३०९॥
तिन्ही गुण आपुलालिये प्रौढी। देहीं नाचविती बागडीं। तो पाहोंही न धाडी। अहंतेतें ॥ ३१०॥
हा ठायवरी। नेहटोनि ठेला अंतरीं। आतां काय वर्ते शरीरीं। हेंहीं नेणे ॥ ३११॥
सांडुनि आंगींची खोळी। सर्प रिगालिया पाताळीं। ते त्वचा कोण सांभाळी। तैसें जालें ॥ ३१२॥
कां सौरभ्य जीर्णु जैसा। आमोदु मिळोनि जाय आकाशा। माघारा कमळकोशा। नयेचि तो ॥ ३१३॥
पैं स्वरूपसमरसें। ऐक्य गा जालें तैसें। तेथ किं धर्म हें कैसें। नेणें देह ॥ ३१४॥
म्हणौनि जन्मजरामरण। इत्यादि जे साही गुण। ते देहींचि ठेले कारण। नाहीं तया ॥ ३१५॥
घटाचिया खापरिया। घटभंगीं फेडिलिया। महदाकाश अपैसया। जालेंचि असे ॥ ३१६॥
तैसी देहबुद्धी जाये। जैं आपणपां आठौ होय। तैं आन कांहीं आहे। तेंवांचुनी ? ॥ ३१७॥
येणें थोर बोधलेपणें। तयासि गा देहीं असणें। म्हणूनि तो मी म्हणें। गुणातीत ॥ ३१८॥
यया देवाचिया बोला। पार्थु अति सुखावला। मेघें संबोखिला। मोरु जैसा ॥ ३१९॥

अर्जुन उवाच ।
कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणात्नेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथंचैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ २१॥

तेणें तोषें वीर पुसे। जी कोण्ही चिन्हीं तो दिसे। जयामाजीं वसे। ऐसा बोधु ॥ ३२०॥
तो निर्गुण काय आचरे। कैसेनि गुण निस्तरे। हें सांगिजो माहेरें। कृपेचेनि ॥ ३२१॥
यया अर्जुनाचिया प्रश्ना। तो षड्गुणांचा राणा। परिहारु आकर्णा। बोलतु असे ॥ ३२२॥
म्हणे पार्था तुझी नवाई। हें येतुलेंचि पुससी काई। तें नामचि तया पाहीं। सत्य लटिकें ॥ ३२३॥
गुणातीत जया नांवें। तो गुणाधीन तरी नव्हे। ना होय तरी नांगवे। गुणां यया ॥ ३२४॥
परी अधीन कां नांगवें। हेंचि कैसेनि जाणावें। गुणांचिये रवरवे-। माजीं असतां ॥ ३२५॥
हा संदेह जरी वाहसी। तरी सुखें पुसों लाहसी। परिस आतां तयासी। रूप करूं ॥ ३२६॥

श्रीभगवानुवाच ।
प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ २२॥

तरी रजाचेनि माजें। देहीं कर्माचें आणोजें। प्रवृत्ति जैं घेईजे। वेंटाळुनि ॥ ३२७॥
तैं मीचि कां कर्मठ। ऐसा न ये श्रीमाठ। दरिद्रलिये बुद्धी वीट। तोही नाहीं ॥ ३२८॥
अथवा सत्त्वेंचि अधिकें। जैं सर्वेंद्रियीं ज्ञान फांके। तैं सुविद्यता तोखें। उभजेही ना ॥ ३२९॥
कां वाढिन्नलेनि तमें। न गिळिजेचि मोहभ्रमें। तैं अज्ञानत्वें न श्रमे। घेणेंही नाहीं ॥ ३३०॥
पैं मोहाच्या अवसरीं। ज्ञानाची चाड न धरी। ज्ञानें कर्मैं नादरी। होतां न दुःखी ॥ ३३१॥
सायंप्रतर्मध्यान्हा। या तिन्ही काळांची गणना। नाहीं जेवीं तपना। तैसा असे ॥ ३३२॥
तया वेगळाचि काय प्रकाशें। ज्ञानित्व यावें असें। कायि जळार्णव पाउसें। साजा होय ? ॥ ३३३॥

ना प्रवर्तलेनि कर्मैं। कर्मठत्व तयां कां गमे। सांगें हिमवंतु हिमें। कांपे कायी ? ॥ ३३४ ॥
नातरी मोह आलिया। काई पां ज्ञाना मुकिजैल तया। हो मा आगीतें उन्हाळेया। जाळवत असे ? ॥ ३३५ ॥

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव यो वतिष्ठति नेङ्गते ॥ २३ ॥

तैसे गुणागुणकार्य हें। आघवेंचि आपण आहे। म्हणौनि एकेका नोहे। तडातोडी ॥ ३३६ ॥
येवढे गा प्रतीती। तो देहा आलासे वस्ती। वाटे जातां गुंती-। माजीं जैसा ॥ ३३७ ॥
तो जिणता ना हरवी। तैसा गुण नव्हे ना करवी। जैसी कां श्रोणवी। संग्रामींची ॥ ३३८ ॥
कां शरीराआंतील प्राणु। घरीं आतिथ्याचा ब्राह्मणु। नाना चोहटांचा स्थाणु। उदासु जैसा ॥ ३३९ ॥
आणि गुणाचा यावाजावा। ढळे चळे ना पांडवा। मृगजळाचा हेलावा। मेरु जैसा ॥ ३४० ॥
हें बहुत कायि बोलिजे। व्योम वारेनि न वचिजे। कां सूर्य ना गिळिजे। अंधकारें ? ॥ ३४१ ॥
स्वप्न कां गा जियापरी। जगतयातें न सिंतरी। गुणीं तैसा अवधारीं। न बंधिजे तो ॥ ३४२ ॥
गुणांसि कीर नातुडे। परी दुरूनि जैं पाहे कोडें। तैं गुणदोष सायिखडें। सभ्यु जैसा ॥ ३४३ ॥
सत्कर्मैं सात्त्विकीं। रज तें रजोविषयकीं। तम मोहादिकीं। वर्तत असे ॥ ३४४ ॥
परिस तयाचिया गा सत्ता। होती गुणक्रिया समस्ता। हें फुडें जाणे सविता। लौकिका जेवीं ॥ ३४५ ॥
समुद्रचि भरती। सोमकांतचि द्रवती। कुमुदें विकासती। चंद्र तो उगा ॥ ३४६ ॥
कां वाराचि वाजे विझे। गगनें निश्चळ असिजे। तैसा गुणाचिये गजबजे। डोलेना जो ॥ ३४७ ॥
अर्जुना येणें लक्षणें। तो गुणातीतु जाणणें। परिस आतां आचरणें। तयाचीं जीं ॥ ३४८ ॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

तरी वस्त्रासि पाठीं पोटीं। नाहीं सुतावांचूनि किरीटी। ऐसें सुये दिठी। चराचर मद्रूपें ॥ ३४९ ॥
म्हणौनि सुखदुःखासरिसें। कांटाळें आचरे ऐसें। रिपुभक्तां जैसें। हरीचें देणें ॥ ३५० ॥
एऱ्हवीं तरी सहजें। सुखदुःख तैंचि सेविजे। देहजळीं होईजे। मासोळी जैं ॥ ३५१ ॥
आतां तें तंव तेणें सांडिलें। आहे स्वस्वरूपेंसीचि मांडिलें। सस्यांतीं निवडिलें। बीज जैसें ॥ ३५२ ॥
कां वोघ सांडूनि गांग। रिघोनि समुद्राचें आंग। निस्तरली लगबग। खळाळाची ॥ ३५३ ॥
तेवीं आपणपांचि जया। वस्ती जाली गा धनंजया। तया देहीं अपैसया। सुख तैसें दुःख ॥ ३५४ ॥
रात्रि तैसें पाहलें। हें धारणा जेवीं एक जालें। आत्माराम देहीं आतलें। द्वंद्व तैसें ॥ ३५५ ॥
पैं निद्रिताचेनि आंगेंशीं। सापु तैशी उर्वशी। तेवीं स्वरूपस्था सरिशीं। देहीं द्वंद्वं ॥ ३५६ ॥
म्हणौनि तयाच्या ठायीं। शेणा सोनया विशेष नाहीं। रत्ना गुंडेया कांहीं। नेणिजे भेदु ॥ ३५७ ॥
घरा येवों पां स्वर्ग। कां वरिपडो वाघ। परी आत्मबुद्धीसि भंग। कदा नव्हे ॥ ३५८ ॥
निवटलें न उपवडे। जळीनलें न विरूढे। साम्यबुद्धी न मोडे। तयापरी ॥ ३५९ ॥
हा ब्रह्मा ऐसेनि स्तविजो। कां नीच म्हणौनि निंदिजो। परी नेणें जळों विझों। राखोंडी जैसी ॥ ३६० ॥
तैसी निंदा आणि स्तुती। नये कोण्हेचि व्यक्ती। नाहीं अंधारें कां वाती। सूर्या घरीं ॥ ३६१ ॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

ईश्वर म्हणौनि पूजिला । कां चोरु म्हणौनि गांजिला । वृषगजीं वेढिला । केला रावो ॥ ३६२ ॥
कां सुहृद पासीं आले । अथवा वैरी वरपडे जाले । परी नेणें राती पाहालें । तेज जेवीं ॥ ३६३ ॥
साहीं ऋतु येतां आकाशें । लिंपिजेचि ना जैसें । तेवीं वैशम्य मानसें । जाणिजेना ॥ ३६४ ॥
आणीकही एकु पाहीं । आचारु तयाच्या ठायीं । तरी व्यापारासि नाहीं । जालें दिसे ॥ ३६५ ॥
सर्वारंभा उटकलें । प्रवृत्तीचें तेथ मावळले । जळती गा कर्मफळें । ते तो आगी ॥ ३६६ ॥
दृष्टादृष्टाचेनि नांवें । भावोचि जीवीं नुगवें । सेवी जें कां स्वभावें । पैठें होये ॥ ३६७ ॥
सुखे ना शिणे । पाषाणु कां जेणें मानें । तैसी सांडीमांडी मनें । वर्जिली असे ॥ ३६८ ॥
आतां किती हा विस्तारु । जाणें ऐसा आचारु । जयातें तोचि साचारु । गुणातीतु ॥ ३६९ ॥
गुणांतें अतिक्रमणें । घडे उपायें जेणें । तो आतां आईक म्हणे । श्रीकृष्णनाथु ॥ ३७० ॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

तरी व्यभिचाररहित चित्तें । भक्तियोगें मातें । सेवी तो गुणातें । जाकळूं शके ॥ ३७१ ॥
तरी कोण मी कैसी भक्ती । अव्यभिचारा काय व्यक्ती । हे आघवीचि निरुती । होआवी लागे ॥ ३७२ ॥
तरी पार्था परियेसा । मी तंव येथ ऐसा । रत्नीं किळावो जैसा । रत्नचि कीं तो ॥ ३७३ ॥
कां द्रवपणचि नीर । अवकाशचि अंबर । गोडी तेचि साखर । आन नाहीं ॥ ३७४ ॥
वन्हि तेचि ज्वाळ । दळाचि नांव कमळ । रूख तेंचि डाळ- । फळादिक ॥ ३७५ ॥
अगा हिम जें आकर्षलें । तेंचि हिमवंत जेवीं जालें । नाना दूध मुरालें । तेंचि दहीं ॥ ३७६ ॥
तैसें विश्व येणें नांवें । हें मीचि पैं आघवें । घेईं चंद्रबिंब सोलावें । न लगे जेवीं ॥ ३७७ ॥
घृताचें थिजलेंपण । न मोडितां घृतचि जाण । कां नाटितां कांकण । सोनेंचि तें ॥ ३७८ ॥
न उकलितां पटु । तंतुचि असे स्पष्टु । न विरवितां घटु । मृत्तिका जेवीं ॥ ३७९ ॥
म्हणौनि विश्वपण जावें । मग तैं मातें घेयावें । तैसा नव्हे आघवें । सकटचि मी ॥ ३८० ॥
ऐसेनि मातें जाणिजे । ते अव्यभिचारी भक्ति म्हणिजे । येथ भेदु कांहीं देखिजे । तरी व्यभिचारु तो ॥ ३८१ ॥
याकारणें भेदातें । सांडूनि अभेदें चित्तें । आपण सकट मातें । जाणावें गा ॥ ३८२ ॥
पार्था सोनयाची टिका । सोनयासी लागली देखा । तैसें आपणपें आणिका । मानावें ना ॥ ३८३ ॥
तेजाचा तेजौनि निघाला । परी तेजींचि असे लागला । तया रश्मी ऐसा भला । बोधु होआवा ॥ ३८४ ॥
पैं परमाणु भूतळीं । हिमकणु हिमाचळीं । मजमाजीं न्याहाळीं । अहं तैसें ॥ ३८५ ॥
हो कां तरंगु लहानु । परी सिंधूसी नाहीं भिन्नु । तैसा ईश्वरीं मी आनु । नोहेचि गा ॥ ३८६ ॥
ऐसेनि बा समरसें । दृष्टि जे उल्हासे । ते भक्ति पैं ऐसे । आम्ही म्हणों ॥ ३८७ ॥
आणि ज्ञानाचें चांगावें । इयेचि दृष्टि नांवें । योगाचेंही आघवें । सर्वस्व हें ॥ ३८८ ॥
सिंधू आणि जळधरा- । माजीं लागली अखंड धारा । तैसी वृत्ति वीरा । प्रवर्ते ते ॥ ३८९ ॥

कां कुहेसीं आकाशा। तोंडीं सांदा नाहीं तैसा। तो परमपुरुषीं तैसा। एकवटे गा ॥ ३९०॥
प्रतिबिंबौनि बिंबवरी। प्रभेची जैसी उजरी। ते सोऽहंवृत्ती अवधारीं। तैसी होय ॥ ३९१॥
ऐसेनि मग परस्परें। ते सोऽहंवृत्ति जैं अवतरे। तैं तियेहि सकट सरे। अपैसया ॥ ३९२॥
जैसा सैंधवाचा रवा। सिंधूमाजीं पांडवा। विरालेया विरवावा। हेंही ठाके ॥ ३९३॥
नातरी जाळूनि तृण। वन्हिही विझे आपण। तैसें भेदु नाशूनि जाण। ज्ञानही नुरे ॥ ३९४॥
माझें पैलपण जाये। भक्त हें ऐलपण ठाये। अनादि ऐक्य जें आहे। तेंचि निवडे ॥ ३९५॥
आतां गुणातें तो किरीटी। जिणे या नव्हती गोष्टी। जे एकपणाही मिठी। पडों सरली ॥ ३९६॥
किंबहुना ऐसी दशा। तें ब्रह्मत्व गा सुदंशा। हें तो पावें जो ऐसा। मातें भजे ॥ ३९७॥
पुढतीं इहीं लिंगीं। भक्तु जो माझा जगीं। हे ब्रह्मता तयालागीं। पतिव्रता ॥ ३९८॥
जैसें गंगेचेनि वोघें। डळमळित जळ जें निघे। सिंधुपद तयाजोगें। आन नाहीं ॥ ३९९॥
तैसा ज्ञानाचिया दिठी। जो मातें सेवी किरीटी। तो होय ब्रह्मतेच्या मुकुटीं। चूडारत्न ॥ ४००॥
यया ब्रह्मत्वासीचि पार्था। सायुज्य ऐसी व्यवस्था। याचि नांवें चौथा। पुरुषार्थ गा ॥ ४०१॥
परी माझें आराधन। ब्रह्मत्वीं होय सोपान। एथ मी हन साधन। गमेन हो ॥ ४०२॥
तरी झणीं ऐसें। तुझ्या चित्तीं पैसें। पैं ब्रह्म आन नसे। मीवांचूनि ॥ ४०३॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ २७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४अ ॥

अगा ब्रह्म या नांवा। अभिप्रायो मी पांडवा। मीचि बोलिजे आघवा। शब्दीं इहीं ॥ ४०४॥
पैं मंडळ आणि चंद्रमा। दोन्ही नव्हती सुवर्मा। तैसा मज आणि ब्रह्मा। भेदु नाहीं ॥ ४०५॥
अगा नित्य जें निष्कंप। अनावृत धर्मरूप। सुख जें उमप। अद्वितीय ॥ ४०६॥
विवेकु आपलें काम। सारूनि ठाकी जें धाम। निष्कर्षाचें निःसीम। किंबहुना मी ॥ ४०७॥
ऐसेसें हो अवधारा। तो अनन्याचा सोयरा। सांगतसे वीरा। पार्थासी ॥ ४०८॥
येथ धृतराष्ट्र म्हणे। संजया हें तूतें कोणें। पुसलेनिविण वायाणें। कां बोलसी ? ॥ ४०९॥
माझी अवसरी ते फेडी। विजयाची सांगें गुढी। येरु जीवीं म्हणे सांडीं। गोठी यिया ॥ ४१०॥
संजयो विस्मयो मानसीं। आहा करूनि रसरसी। म्हणे कैसें पां देवेंसी। द्वंद्व यया ? ॥ ४११॥
तरी तो कृपाळु तुष्टो। यया विवेकु हा घोंटो। मोहाचा फिटो। महारोगु ॥ ४१२॥
संजयो ऐसें चिंतितां। संवादु तो सांभाळितां। हरिखाचा येतु चित्ता। महापूरु ॥ ४१३॥
म्हणौनि आतां येणें। उत्साहाचेनि अवतरणें। श्रीकृष्णाचें बोलणें। सांगिजैल ॥ ४१४॥
तया अक्षराआंतील भावो। पाववीन मी तुमचा ठावो। आइका म्हणे ज्ञानदेवो। निवृत्तीचा ॥ ४१५॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां गुणत्रयविभागयोगोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

Encoded and proofread by
Chhaya Deo, Sharad Deo, and Vishwas Bhide.
Assisted by
Sunder Hattangadi, Ashwini Deo, and Shree Devi Kumar.

Please send corrections to sanskrit@cheerful.com
Last updated October 15, 2005